झारखंड उच्च न्यायालय रांची

सिविल रिट याचिका सं. **3351/2023**

बिपिन कुमार बिहारी, उम्र- लगभग 59 वर्ष, पिता- स्व. बिंदेश्वरी ठाकुर, वर्तमान निवासी जनार्दन कॉलोनी, जसीदह, डाकघर और थाना- जसीदह, जिला- देवघर, स्थायी निवासी एवं डाकघर- रसोईंक, जिला- खगड़िया, राज्य- बिहार।

याचिकाकर्ता

बनाम

1. झारखण्ड राज्य
2. झारखंड राज्य, इसके मुख्य सचिव के माध्यम से, प्रोजेक्ट बिल्डिंग, डाकघर- धुर्वा, थाना- जगन्नाथपुर, जिला रांची, झारखंड।
3. प्रधान सचिव, जल संसाधन विकास, रांची, नेपाल हाउस, डाकघर और थाना- डोरंडा, जिला रांची, झारखंड।
4. प्रधान सचिव, व्यक्तिगत प्रशासन सुधार एवं राजभाषा विभाग, झारखंड सरकार, प्रोजेक्ट बिल्डिंग, डाकघर- धुर्वा, थाना.: जगन्नाथपुर, जिला रांची, झारखंड।
5. विकास आयुक्त, झारखंड सरकार, रांची एवं डी.पी.C के अध्यक्ष, डाकघर और थाना- डोरंडा, जिला रांची, झारखंड।
6. संयुक्त सचिव, जल संसाधन विभाग, रांची, नेपाल हाउस, डाकघर और थाना- डोरंडा, जिला रांची, झारखंड।
7. उप सचिव, जल संसाधन विकास, रांची, नेपाल हाउस, डाकघर और थाना- डोरंडा, जिला रांची, झारखंड।

विरोधी पक्ष

विरोधी पक्ष

कोरम: माननीय न्यायमूर्ति श्री सुजीत नारायण प्रसाद

याचिकाकर्ता के लिए: श्री दीपक कुमार दुबे, अधिवक्ता
राज्य के लिए: श्री इंद्रनील भदूरी, वरिष्ठ अधिवक्ता IV

मौखिक निर्णय

आदेश क्रमांक 03 : दिनांक 8 दिसम्बर 2023

1. यह रिट याचिका भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत है, जिसमें राज्य के निर्णय को प्रश्नांकित किया गया है कि उसे कार्यकारी अभियंता के पद पर नियमित पदोन्नति दी गई है, जो अधिसूचना जारी होने की तिथि से प्रभावी है, अर्थात् 27.12.2022। साथ ही, विरोधी पक्ष को निर्देश दिया गया है कि वे उसकी पदोन्नति के मामले पर विचार करें, जो 25.09.2018 से प्रभावी हो, उस दिन जब डीपीसी ने याचिका दाता को पदोन्नति के लिए योग्य माना था, लेकिन लंबित विभागीय कार्यवाही के कारण इसे सील कवर में रखा गया था, जो बाद में दंडादेश में परिणत हुआ, लेकिन उच्च न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 226 के तहत दिए गए अधिकार का प्रयोग करते हुए रद्द कर दिया गया।

2. याचिका में किए गए तर्कों के अनुसार मामले के संक्षिप्त तथ्यों को यहां निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया गया है:

3. याचिकाकर्ता ने 19.01.1987 को डब्लूआरडी, देवघर में मुख्य अभियंता के कार्यालय में शामिल होकर जूनियर इंजीनियर के रूप में कार्य किया और 17.09.2001 को सहायक अभियंता के पद पर पदोन्नत हुए। आगे कहा गया है कि पदोन्नति प्राप्त करने के बाद याचिकाकर्ता को डब्लूआरडी, दरभंगा, पश्चिम नहर विभाग, आंधराथाढ़ी, मधुबनी, बिहार में मुख्य अभियंता के कार्यालय में नियुक्त किया गया।

4. बिहार राज्य के विभाजन के बाद, याचिकाकर्ता की सेवाएँ नए बने झारखंड राज्य को आवंटित की गईं।

5. इसके बाद याचिकाकर्ता ने विभिन्न स्थानों पर कार्य किया और अंततः 15.01.2009 को ग्रामीण विकास विशेष विभाग, गुमला में सहायक अभियंता के रूप में नियुक्त हुए।

6. ग्रामीण विकास विशेष विभाग, गुमला ने दक्षिण कोयल नदी पर कमदरा बानो पथ के 10वें किलोमीटर पर उच्चस्तरीय पुलों के निर्माण के लिए ठेकेदारों से निविदाएँ आमंत्रित कीं। कार्य का कुल मूल्य 291.86 लाख रुपये था और पूरा करने की अवधि लिखित आदेश से कार्य प्रारंभ करने की तिथि से 18 महीने थी।

7. उच्च स्तरीय पुल के निर्माण का कार्य वर्ष 2009 में पूरा हुआ और पूरा होने का प्रमाण पत्र ग्रामीण विकास विशेष विभाग, गुमला के कार्यकारी अभियंता द्वारा 17.06.2010 को जारी किया गया। कार्यकारी अभियंता द्वारा यह सही ढंग से प्रमाणित किया गया कि एक पैकेज में चार पुलों का निर्माण ठेकेदार द्वारा सफलतापूर्वक पूरा किया गया है।

8. अनुबंध विभाग द्वारा टर्नकी आधार पर दिया गया था, जिसके अनुसार ठेकेदार को अपना स्वयं का डिज़ाइन और ड्राइंग प्रस्तुत करनी थी। ठेकेदार ने अपना डिज़ाइन प्रस्तुत किया, जिसे उस समय के विभाग के अभियंताओं द्वारा स्वीकृत किया गया। उस समय याचिकाकर्ता वर्तमान कार्य से संबंधित नहीं थे और गुमला में भी नियुक्त नहीं थे।

9. याचिकाकर्ता का कहना है कि एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है और याचिकाकर्ता को उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोपी बनाया गया है, जिससे गुमला थाना मामला संख्या 267/2011 उत्पन्न हुआ। इसमें आरोप लगाया गया है कि याचिकाकर्ता 15.01.2009 से पुल के कार्य से जुड़े रहे हैं।

10. इसके बाद, विरोधी पक्ष ने आपराधिक मामले की रिपोर्ट की प्रतीक्षा किए बिना विभागीय कार्रवाई शुरू करने का निर्णय लिया। याचिकाकर्ता को 30.06.2011 को तत्काल प्रभाव से निलंबित किया गया, जैसा कि ज्ञापन संख्या 4127 में उल्लेखित है, विभागीय कार्यवाही की संभावना के तहत।

11. याचिकाकर्ता को 20.09.2011 को आरोप पत्र जारी किया गया। याचिकाकर्ता के खिलाफ केवल एक ही आरोप लगाया गया था, जो पुल के काम की निगरानी की कमी थी। आरोप पत्र में उल्लेख किया गया है कि पुल के प्रश्न में 12 स्पैन में से 10 स्पैन भारी बारिश के कारण खराब हो गए थे, जो 16.06.2011 से 19.06.2011 के बीच हुई थी।

12. याचिकाकर्ता ने 30.01.2012 को आरोप पत्र के ज्ञापन का उत्तर प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ता ने कहा कि उन्होंने केवल 15.01.2009 को सहायक अभियंता के रूप में कार्यभार ग्रहण किया और उस समय तक पुल की नींव और उप-संरचना का कार्य पूरा हो चुका था, और सुपर-स्ट्रक्चर का कार्य भी पूरा होने वाला था। याचिकाकर्ता ने यह भी कहा कि 18वां चालू खाता बिल 15.10.2008 को तैयार किया गया था, अर्थात् याचिकाकर्ता के शामिल होने से पहले, और इसके बाद न तो कोई माप लिया गया और न ही कोई भुगतान किया गया। याचिकाकर्ता ने अपने खिलाफ लगाए गए सभी आरोपों से इनकार किया।

13. जांच अधिकारी ने 12.04.2013 को याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों से याचिकाकर्ता को मुक्त करते हुए जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की।

14. जांच रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद, अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने अधिसूचना संख्या 2852 दिनांक 13.11.2013 के माध्यम से याचिकाकर्ता पर दंड लगाया और विभागीय कार्यवाही को निम्नलिखित आदेशों के साथ निपटाया:

i. याचिकाकर्ता का निलंबन आदेश की तिथि से रद्द किया जाता है।

ii. उनके तीन वेतन वृद्धि को संचयी प्रभाव के साथ रोका जा रहा है।

iii. वह अगले पांच वर्षों तक किसी भी पदोन्नति के लिए पात्र नहीं है

15. याचिकाकर्ता ने पहले इस माननीय न्यायालय में रिट याचिका (एस) संख्या 7433/2013 के अंतर्गत दंडादेश के खिलाफ याचिका दायर की थी, जो अधिसूचना संख्या 2852 दिनांक 13.11.2013 के माध्यम से जारी किया गया था। इसे माननीय न्यायालय द्वारा 07.07.2015 को अनुमति दी गई, जिसके द्वारा दंडादेश को रद्द कर दिया गया और विरोधी पक्ष को दूसरे शो-कॉज नोटिस के स्तर से आगे बढ़ने की स्वतंत्रता दी गई, जिसमें जांच अधिकारी की रिपोर्ट से

भिन्नता के लिए संभावित कारणों का संकेत दिया गया और कानून के अनुसार निर्णय लेने का निर्देश दिया गया।

16. इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका (एस) संख्या 7433/2013 में पारित आदेश प्राप्त करने पर, विरोधी पक्ष ने अधिसूचना दिनांक 13.11.2013 को रद्द कर दिया और याचिकाकर्ता को दूसरे शो-कॉज नोटिस जारी करने का निर्णय लिया, जो पत्र संख्या 2998 दिनांक 02.09.2015 के माध्यम से भेजा गया।

17. दूसरे कारण बताओ नोटिस में जांच रिपोर्ट के साथ भिन्नता के कारणों का उल्लेख करने के बजाय, विरोधी पक्ष ने एक अलग मुद्दा उठाया कि याचिकाकर्ता ने कुल अनुबंध मूल्य 291.81 लाख रुपये के खिलाफ 45,51,890 रुपये का भुगतान करने की सिफारिश की थी और पुल को हुए नुकसान के कारण पुल पर खर्च किए गए पैसे बर्बाद हो गए हैं। याचिकाकर्ता को निर्देश दिया गया कि वह 15 दिनों के भीतर यह बताएं कि उसे प्रमुख दंड क्यों नहीं दिया जाए।

18. याचिकाकर्ता ने 15.09.2015 को दूसरे शो-कॉज नोटिस का विस्तृत उत्तर प्रस्तुत किया, जिसमें उसने कहा कि दूसरे शो-कॉज नोटिस में याचिकाकर्ता के खिलाफ एक नया और अलग आरोप लगाया गया है, जो स्वीकार्य नहीं है।

19. उत्तर प्राप्त करने के बाद, विरोधी पक्ष ने ज्ञापन संख्या 4467 दिनांक 28.12.2015 में निहित आदेश फिर से जारी किया, जिसके अनुसार यह निर्णय लिया गया कि तीन वेतन वृद्धि को संचयी प्रभाव के साथ रोका जाएगा, अगले तीन वर्षों तक कोई पदोन्नति नहीं होगी और निलंबन की अवधि में केवल जीविका भत्ते याचिकाकर्ता को भुगतान किए जाएंगे।

20. याचिकाकर्ता ने फिर से रिट याचिका (एस) संख्या 475/ 2016 के तहत एक रिट आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें ज्ञापन संख्या 4467 दिनांक 28.12.2015 में निहित दंडादेश को चुनौती दी गई। पक्षों की सुनवाई के बाद, इस न्यायालय ने आदेश दिनांक 28.12.2015 को रद्द कर दिया।

21. रिट अदालत द्वारा पारित आदेश के बाद, याचिकाकर्ता को सहायक अभियंता के पद से कार्यकारी अभियंता के पद पर नियमित पदोन्नति दी गई, जो अधिसूचना दिनांक 27.12.2022 के माध्यम से हुई। हालांकि, यह तथ्य ध्यान में नहीं रखा गया कि अन्य समान स्थिति वाले व्यक्तियों को उनकी निर्धारित तिथि से पदोन्नति दी गई है, जबकि याचिकाकर्ता को 27.12.2022 से पदोन्नति दी गई है, न कि उसकी निर्धारित तिथि से।

22. याचिकाकर्ता का कहना है कि समान स्थिति वाले व्यक्ति लक्ष्मी नारायण को सहायक अभियंता के पद से कार्यकारी अभियंता के पद पर 25.09.2018 से पदोन्नति दी गई है और उक्त पद के वित्तीय लाभ उसे उस पद में शामिल होने की वास्तविक तिथि से दिए गए हैं, लेकिन याचिकाकर्ता को उसकी निर्धारित तिथि से पदोन्नति से वंचित रखा गया है और उसे बाद की तिथि से पदोन्नति दी गई है।

23. निर्धारित तिथि से पदोन्नति के अस्वीकृति से आहत होकर, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय का रुख किया और वर्तमान रिट याचिका दायर की।

24. तथ्यों के दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता सहायक अभियंता के रूप में कार्य करते समय एक विभागीय कार्यवाही का सामना कर रहा था। जब उक्त विभागीय कार्यवाही लंबित थी, तब वह कार्यकारी अभियंता के पद के लिए विचार करने के लिए योग्य हो गया था। उसका मामला विभागीय पदोन्नति समिति के समक्ष रखा गया। हालांकि, विभागीय पदोन्नति समिति ने याचिकाकर्ता को पदोन्नति के लिए योग्य पाया लेकिन लंबित विभागीय कार्यवाही के आधार पर इसे सील कवर में रखा गया।

25. उक्त विभागीय कार्यवाही दंडादेश में परिणत हुई। अंततः, उक्त दंडादेश को इस न्यायालय में रिट याचिका (एस) संख्या 475/ 2016 द्वारा चुनौती दी गई, जिसके तहत दंडादेश दिनांक 28.12.2015 को रद्द कर दिया गया और रिट याचिका को अनुमति दी गई।

26. विरोधी पक्ष ने इसके बाद विभागीय पदोन्नति समिति द्वारा लिए गए निर्णय की अधिसूचना जारी की है, जिसमें याचिकाकर्ता को कार्यकारी अभियंता के पद पर पदोन्नति दी गई है, जो अधिसूचना जारी होने की तिथि से प्रभावी है, अर्थात् 27.12.2022।

27. याचिकाकर्ता ने शिकायत उठाई कि जब इस न्यायालय द्वारा दंडादेश को रद्द कर दिया गया है, तो नियुक्ति प्राधिकरण के लिए यह संभव नहीं है कि वह उसे 27.12.2022 से कार्यकारी अभियंता के पद पर पदोन्नति दे, बल्कि यह 25.09.2018 की निर्धारित तिथि से होनी चाहिए।

28. उपरोक्त शिकायत का समाधान न होने के कारण, वर्तमान रिट याचिका दायर की गई है।

29. याचिकाकर्ता के लिए उपस्थित अधिवक्ता श्री दीपक कुमार दुबे ने प्रस्तुत किया कि राज्य प्राधिकरण की कार्रवाई पूरी तरह से अवैध और अनुचित है, इसका कारण यह है कि जब इस न्यायालय द्वारा दंडादेश को रद्द कर दिया गया है, तो इसका निहित अर्थ होगा कि कोई आरोप पत्र नहीं था, इसलिए याचिकाकर्ता 25.09.2018 से कार्यकारी अभियंता के पद के लिए पदोन्नति का हकदार हो गया। लेकिन प्राधिकरण ने 25.09.2018 से ऐसी पदोन्नति देने के बजाय 27.12.2022 से पदोन्नति दी है, जो याचिकाकर्ता को उसकी गलती के बिना दंडित करने के समान है, क्योंकि पदोन्नति का आदेश चार वर्षों तक याचिकाकर्ता को नुकसान पहुंचाने के बाद अधिसूचना किया गया है।

30. राज्य की ओर से प्रतिवाद पत्र दायर किया गया है।

31. श्री इंद्रनील भदूरी, जो झारखंड राज्य के लिए अधिवक्ता हैं, ने राज्य द्वारा लिए गए निर्णय का बचाव किया है।

32. यह प्रस्तुत किया गया है कि यह ऐसा मामला नहीं है जहां विभाग ने याचिकाकर्ता को निर्दोष पाया हो और यही कारण है कि विभाग ने निर्धारित तिथि से पदोन्नति न देने का निर्णय लिया है, अर्थात् 25.09.2018, बल्कि इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के आधार पर पदोन्नति दी गई और तुरंत उसके बाद अधिसूचना जारी की गई जिसमें उसे कार्यकारी अभियंता के पद पर पदोन्नति दी गई।

33. इस न्यायालय ने पक्षों के अधिवक्ताओं की सुनवाई की है और रिट याचिका में किए गए तर्कों और प्रतिवाद पत्र पर विचार किया है।

34. इस न्यायालय, पक्षों की ओर से प्रस्तुत किए गए तर्कों के आधार पर, निम्नलिखित मुद्दे का उत्तर देने की प्रक्रिया में है:

(i) क्या विभागीय कार्यवाही में मुक्त करना केवल अनुशासनात्मक प्राधिकरण के निर्णय पर ही मुक्त करना कहा जा सकता है, या यह भी कहा जाएगा कि यदि अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा लिया गया निर्णय उच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा के अधिकार के तहत दंडादेश को रद्द करके हस्तक्षेप किया गया है, तो वह भी मुक्त करना होगा?

35. इस न्यायालय ने उक्त मुद्दे का उत्तर देने से पहले यह उचित समझा कि वह सील कवर में मामले को रखने की अवधारणा पर विचार करे।

36. सील कवर प्रक्रिया किसी भी भर्ती/पदोन्नति नियम के तहत नहीं है। यह मुद्दा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष **"भारत संघ बनाम के.वी. जंकिरामन" (1991) 4 एससीसी 109** के मामले में विचाराधीन आया, जो केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा अनुशासनात्मक प्राधिकरण की कार्रवाई से संबंधित एक आदेश के संबंध में था, जिसमें एक सर्कुलर को चुनौती दी गई थी जो सार्वजनिक सेवक को लंबित विभागीय कार्यवाही के आधार पर वंचित कर रहा था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इसे व्याख्यायित किया और सील कवर की अवधारणा को विकसित करते हुए सिद्धांत स्थापित किया।

37. उपरोक्त प्रक्रिया के तहत, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि सार्वजनिक सेवक की पदोन्नति का मामला सील कवर में रखा जाए बिना किसी प्रतिबंध के ऐसे सार्वजनिक सेवक के मामले पर विचार करने के लिए विभागीय पदोन्नति समिति के समक्ष। इसके पीछे का उद्देश्य, जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सोचा था, यह था कि यदि लंबित विभागीय कार्यवाही के मामले में और यदि निर्णय अंततः दोषी कर्मचारी के पक्ष में मुक्त करने का होता है, तो ऐसे सार्वजनिक सेवक को क्यों पीड़ित होना पड़े।

38. उपरोक्त पीड़ा का निराकरण मूल उद्देश्य था और साथ ही यह भी सुनिश्चित करना था कि अनुशासनात्मक प्राधिकरण के समक्ष प्रतिकूल आरोप लगाने पर रोक लगे ताकि किसी भी प्रतिकूलता से बचा जा सके।

39. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे यह निर्धारित किया कि सील कवर प्रक्रिया के तहत विभागीय कार्यवाही का सामना कर रहे सार्वजनिक सेवक का मामला भी विचार किया जाना चाहिए। विभागीय पदोन्नति समिति को उसके सेवा रिकॉर्ड या अन्य पात्रता मानदंडों के आधार पर उसकी कुल प्रदर्शन का आकलन करना होगा और **उसे उपयुक्त या अनुपयुक्त होने के** संबंध में अपनी राय देनी होगी।

40. **अनुपयुक्त होने** के मामले में, यदि दोषी कर्मचारी को मुक्त किया गया हो, तो भी ऐसे सार्वजनिक सेवक का मामला उसके पक्ष में कोई सकारात्मक परिणाम नहीं देगा। हालांकि, यदि संबंधित सार्वजनिक सेवक को **उपयुक्त** पाया गया है, तो फिर मुक्त करना प्रभाव डालेगा।

41. यह अवधारणा विकसित की गई है कि यदि किसी सार्वजनिक सेवक को **उपयुक्त** पाया गया है लेकिन विभागीय कार्यवाही लंबित है, तो ऐसे सार्वजनिक सेवक का मामला सील कवर में रखा जाएगा ताकि उसे विभागीय कार्यवाही में मुक्त करने के बाद खोला जा सके। उक्त निर्णय का प्रासंगिक अनुच्छेद यहाँ उद्धृत किया जा रहा है:

> 8. इन सभी मामलों में सामान्य प्रश्न सेवा न्यायशास्त्र में "सील कवर प्रक्रिया" के रूप में जाने जाने वाले विषय से संबंधित हैं। संक्षेप में, प्रश्न हैं:
>
> (1) वह कौन सी तिथि है जिससे कहा जा सकता है कि किसी कर्मचारी के खिलाफ अनुशासनात्मक/आपराधिक कार्यवाही लंबित है? (2) यदि ऐसे कार्यवाही में कर्मचारी को दोषी ठहराया जाता है और दोष की गंभीरता दंड के लिए निलंबन से अलग है, तो क्या प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए? (3) एक कर्मचारी जिसे पूरी तरह से या आंशिक रूप से मुक्त किया गया है, उसे किन लाभों का अधिकार है और वह किस तिथि से होगा?
>
> "सील कवर प्रक्रिया" तब अपनाई जाती है जब किसी कर्मचारी को पदोन्नति, वेतन वृद्धि आदि के लिए योग्य माना जाता है, लेकिन उस समय उसके खिलाफ अनुशासनात्मक/आपराधिक कार्यवाही लंबित होती है, और इसलिए, उसके लाभ के अधिकार की निष्कर्ष को सील कवर में रखा जाता है जिसे संबंधित कार्यवाही समाप्त होने के बाद खोला जाएगा। इसलिए, इन प्रश्नों की प्रासंगिकता और महत्व।
>
> 22. यह दंड इस अवलोकन से पूर्व है कि जब कर्मचारी को अनुशासनात्मक/न्यायालय की कार्यवाही के निष्कर्ष पर पूरी तरह से मुक्त किया जाता है, अर्थात् जब कोई कानूनी दंड, जिसमें चेतावनी भी शामिल है, लागू नहीं होता है, तो उसे उस तिथि से एक काल्पनिक पदोन्नति दी जानी चाहिए जब उसे विभागीय पदोन्नति समिति द्वारा पदोन्नत किया जाता। यह ज्ञापन में दिए गए निर्देश को अगले उप-पैराग्राफ में दिए गए अन्य निर्देश के

साथ पढ़ा जाना चाहिए, जिसमें कहा गया है कि यदि कार्यवाही के परिणामस्वरूप यह पाया जाता है कि अधिकारी पर कुछ आरोप हैं, तो कम से कम चेतावनी का दंड लगाया जाना चाहिए। यह निर्देश पहले के निर्देशों को निरस्त करता है जो यह कहते थे कि जहां विभागीय अनुशासनात्मक कार्यवाही आयोजित की गई हो, वहां ऐसी कार्यवाही के परिणामस्वरूप "चेतावनी" नहीं दी जानी चाहिए।

23. इसमें कोई संदेह नहीं है कि जब एक कर्मचारी को पूरी तरह से मुक्त किया जाता है और उसे चेतावनी का दंड भी नहीं दिया जाता, जिससे यह संकेत मिलता है कि वह किसी भी तरह से दोषी नहीं था, तो उसे पदोन्नति के पद की वेतन सहित किसी भी लाभ से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। इन सभी मामलों में अपीलकर्ता प्राधिकरणों की ओर से यह तर्क दिया गया कि व्यक्ति को उस पद का वेतन नहीं मिल सकता जब तक कि वह उसका कार्यभार ग्रहण न करे। उन्होंने मौलिक नियमों और पूरक नियमों के एफ.आर. 17(1) पर निर्भरता जताई, जो इस प्रकार है:

> "एफ.आर. 17. (1) इन नियमों में विशेष रूप से किए गए किसी अपवाद और उप-नियम (2) के प्रावधानों के अधीन, एक अधिकारी उस पद के कार्यभार ग्रहण करने की तिथि से उस पद से जुड़े वेतन और भत्ते प्राप्त करना शुरू करेगा, और जैसे ही वह उन कर्तव्यों का निर्वहन करना बंद करेगा, वह उन्हें प्राप्त करना भी बंद कर देगा:
>
> शर्त यह है कि जो अधिकारी बिना किसी अनुमति के ड्यूटी से अनुपस्थित है, उसे ऐसी अनुपस्थिति की अवधि के दौरान कोई वेतन और भत्ते नहीं मिलेंगे।"

26. इसलिए, हम इस निष्कर्ष से व्यापक रूप से सहमत हैं कि जब एक कर्मचारी को पूरी तरह से मुक्त किया जाता है, जिसका अर्थ है कि उसे किसी भी तरह से दोषी नहीं पाया गया है और उसे चेतावनी का दंड भी नहीं दिया गया है, तो उसे उच्च पद के वेतन का लाभ अन्य लाभों के साथ दिया जाना चाहिए, उस तिथि से जिस पर उसे सामान्यतः पदोन्नति दी जाती, लेकिन अनुशासनात्मक/आपराधिक कार्यवाही के कारण। हालांकि, ऐसे मामले हो सकते हैं जहां कार्यवाही, चाहे अनुशासनात्मक हो या आपराधिक, उदाहरण के लिए, कर्मचारी की इच्छा पर विलंबित होती है या अनुशासनात्मक कार्यवाही में मंजूरी या आपराधिक कार्यवाही में बरी होना संदेह के लाभ पर होता है या सबूतों की अनुपलब्धता के कारण होता है जो कर्मचारी के कार्यों के कारण

होती है आदि। ऐसे परिस्थितियों में, संबंधित प्राधिकरणों को यह तय करने का अधिकार होना चाहिए कि क्या कर्मचारी वास्तव में अंतराल की अवधि के लिए कोई वेतन पाने का हकदार है और यदि हां, तो वह किस हद तक हकदार है। जीवन जटिल होने के कारण, यह संभव नहीं है कि सभी परिस्थितियों का अनुमान लगाया जाए और विस्तृत रूप से उल्लेख किया जाए जिनके तहत ऐसी विचारणा आवश्यक हो सकती है। हालांकि, जब ऐसी परिस्थितियाँ मौजूद हों तो उन्हें नजरअंदाज करना और यह निर्धारित करना कि हर मामले में जब एक कर्मचारी अनुशासनात्मक/आपराधिक कार्यवाही में मुक्त किया जाता है तो उसे अंतराल की अवधि के लिए सभी वेतन का हकदार होना चाहिए, प्रशासन में अनुशासन को कमजोर करना और सार्वजनिक हितों को खतरे में डालना होगा। इसलिए, हम इस बात से सहमत नहीं हैं कि किसी कर्मचारी को वेतन देना सभी परिस्थितियों में अवैध होगा। जबकि हम पहले उप-पैराग्राफ में उपधारा (iii) के बाद दिए गए अंतिम वाक्य को मंजूर नहीं करते हैं, जिसमें कहा गया है कि "लेकिन उसे वास्तविक पदोन्नति की तिथि से पूर्व काल्पनिक पदोन्नति की अवधि के लिए कोई बकाया वेतन नहीं दिया जाएगा", हम निर्देश देते हैं कि उक्त वाक्य के स्थान पर निम्नलिखित वाक्य ज्ञापन में पढ़ा जाए:

> "हालांकि, संबंधित अधिकारी को वास्तविक पदोन्नति की तिथि से पूर्व काल्पनिक पदोन्नति की अवधि के लिए किसी भी बकाया वेतन का हकदार होगा या नहीं, और यदि हां, तो किस हद तक, इसे संबंधित प्राधिकरण द्वारा सभी तथ्यों और अनुशासनात्मक कार्यवाही/आपराधिक अभियोजन की परिस्थितियों पर विचार करके तय किया जाएगा। जहां प्राधिकरण बकाया वेतन या इसके किसी भाग को अस्वीकार करता है, वहां उसे ऐसा करने के कारणों को दर्ज करना होगा।"

34. इस मामले में, उत्तरदाता कर्मचारी का मामला अगस्त 1982 में विभागीय पदोन्नति समिति (डीपीसी) द्वारा पदोन्नति के लिए विचार किया गया। हालाँकि, उसके खिलाफ लंबित अनुशासनात्मक कार्यवाही के कारण परिणाम को सील कवर में रखा गया। कर्मचारी के अनुसार, 11 अक्टूबर 1985 को अनुशासनात्मक कार्यवाही पूरी तरह से मुक्त करने पर समाप्त हुई। इसके बाद, मार्च 1986 में एक बार फिर डीपीसी का गठन किया गया, जिसने कर्मचारी के मामले पर विचार करने के बाद उसे 26 जुलाई 1986 से पदोन्नति के लिए सिफारिश की। यह स्पष्ट रूप से ज्ञापन में शामिल निर्देशों के

विपरीत था। यदि उसे अगस्त 1982 में डीपीसी द्वारा पदोन्नति के लिए योग्य पाया गया था, तो उसे उस तिथि से पदोन्नति का हकदार होना चाहिए जब उसका तत्काल जूनियर पदोन्नत हुआ था। इसलिए, न्यायाधिकरण ने सही ढंग से अपीलकर्ता को सील कवर खोलने का निर्देश दिया और यदि 1982 में डीपीसी ने उसे पदोन्नति के लिए योग्य पाया, तो उसे उस तिथि से पदोन्नति देने का निर्देश दिया जब उसका तत्काल जूनियर पदोन्नत हुआ था। हालाँकि, ऐसा करते समय, न्यायाधिकरण ने अंतराल की अवधि के लिए वेतन की बकाया राशि और सभी संबंधित लाभों का भुगतान करने का भी निर्देश दिया। चूंकि हमने न्यायाधिकरण की पूर्ण पीठ के निर्णय से असहमत होते हुए यह कहा है कि वेतन की बकाया राशि का लाभ स्वचालित रूप से नहीं मिलेगा बल्कि प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा, हम उक्त आदेश को इस हद तक संशोधित करते हैं कि यह वेतन की बकाया राशि के भुगतान का निर्देश देता है और अपीलकर्ता प्राधिकरण को यह विचार करने का निर्देश देते हैं कि क्या मामले की परिस्थितियों में कर्मचारी को किसी भी बकाया वेतन का हकदार था और किस हद तक। प्राधिकरण, निश्चित रूप से, वेतन की पूरी या आंशिक बकाया राशि के अस्वीकृति के कारण बताएगा। इसलिए, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है और लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

42. उपरोक्त अनुच्छेदों से स्पष्ट है कि मूल विचार यह है कि यदि कोई सार्वजनिक सेवक विभागीय कार्यवाही का सामना कर रहा है और उसे मुक्त किया जाता है, तो उसे पीड़ित नहीं होने दिया जाना चाहिए।

43. इस मामले के तथ्यों पर लौटते हुए, यहाँ यह स्वीकार किया गया है कि याचिकाकर्ता को अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा दंडित किया गया था। याचिकाकर्ता, उपरोक्त दंडादेश से आहत होकर, ने इस न्यायालय में रिट याचिका (एस) संख्या 475/ 2016 के तहत याचिका दायर की, जिसे 28.12.2015 के दंडादेश को रद्द करके अनुमति दी गई।

44. राज्य द्वारा प्रतिवाद पत्र में यह आधार प्रस्तुत किया गया है कि मामले को सील कवर में रखने का सिद्धांत लागू नहीं होगा क्योंकि याचिकाकर्ता को अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा मुक्त नहीं किया गया था; बल्कि, दंडादेश को इस न्यायालय द्वारा रद्द और निरस्त कर दिया गया था।

45. कानून यह स्पष्ट है कि विभागीय कार्यवाही तब शुरू मानी जाएगी जब आरोप पत्र जारी किया जाएगा, जिसके बाद जांच अधिकारी/प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की नियुक्ति होगी और

उसके बाद जांच अधिकारी पर आरोप पत्र में लगाए गए आरोपों के प्रमाण या निष्कर्ष देने की जिम्मेदारी होगी।

46. यदि आरोप साबित नहीं होता है, तो एक तंत्र भी विकसित किया गया है जो आचार नियमों में नहीं है; बल्कि, यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **"पंजाब नेशनल बैंक और अन्य बनाम कुंज बिहारी मिश्रा" [(1998) 7** एससीसी **84]** के मामले में दिए गए निर्णय में है।

47. उपरोक्त निर्णय में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह सिद्धांत स्थापित किया है कि यदि आरोप साबित नहीं होता है लेकिन यह अनुशासनात्मक प्राधिकरण को स्वीकार्य नहीं है, तो क्या किया जाना चाहिए। अनुशासनात्मक प्राधिकरण को अपने मत से भिन्नता रखने का अधिकार दिया गया है, लेकिन इसके साथ ही एक समानांतर कार्रवाई की आवश्यकता होती है ताकि दोषी कर्मचारी को सुनवाई का अवसर प्रदान किया जा सके ताकि वह अपने मत के भिन्नता को कारण सहित प्रस्तुत कर सके और सार्वजनिक सेवक की ओर से आपत्ति दर्ज की जा सके।

48. इसके पीछे का मूल विचार यह है कि जब आरोप सिद्ध नहीं हुए हैं और यदि किसी मामले में वही स्वीकार्य नहीं है, तो कारण को लोक सेवक को सूचित किया जाना चाहिए ताकि इसे अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा प्राकृतिक न्याय के मौलिक सिद्धांत को पूरा करने के लिए विचार किया जा सके। न्यायाधीश के निर्णय का प्रासंगिक अनुच्छेद यहां उद्धृत और संदर्भित किया जा रहा है:

> 17. ये टिप्पणियाँ स्पष्ट रूप से पहले उद्धृत बिमल कुमार पंडित मामले [AIR 1963 एससी 1612] के अवलोकनों के साथ मेल खाती हैं और पहले चरण में ही लागू होंगी। उपरोक्त अंश स्पष्ट रूप से उस प्राधिकरण की आवश्यकता को उजागर करते हैं जो अंततः प्रतिकूल निष्कर्ष दर्ज करने वाला है, उसे दोषी अधिकारी को सुनवाई देने की आवश्यकता है। यदि जांच अधिकारी ने प्रतिकूल निष्कर्ष दिया होता, जैसा कि करुणाकर मामले [(1993) 4 एससीसी 727] में आवश्यक था, तो पहले चरण में कर्मचारी को अनुशासनात्मक प्राधिकरण के समक्ष अपने विचार प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाना चाहिए, भले ही उन्हें पहले अवसर दिया गया हो। यह तर्क नहीं बनता कि जब दोषी अधिकारियों के पक्ष में निष्कर्ष प्रस्तावित किया जा रहा है, तो कोई अवसर नहीं दिया जाना चाहिए। जांच का पहला चरण तब तक पूरा नहीं होता जब तक अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने अपने निष्कर्ष दर्ज नहीं किए हैं। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की मांग होगी कि जो प्राधिकरण दोषी अधिकारी के खिलाफ निर्णय लेने का प्रस्ताव करता है, उसे उसे सुनवाई देने का अवसर देना चाहिए। जब जांच अधिकारी आरोपों को सिद्ध मानता है, तो वह रिपोर्ट दोषी अधिकारी को दी जानी चाहिए ताकि वह

अनुशासनात्मक प्राधिकरण के समक्ष प्रतिनिधित्व कर सके, जो आगे की कार्रवाई कर सकता है जो दोषी अधिकारी के लिए हानिकारक हो सकती है। **जब, जैसे कि वर्तमान मामले में, जांच रिपोर्ट दोषी अधिकारी के पक्ष में है लेकिन अनुशासनात्मक प्राधिकरण ऐसे निष्कर्षों से असहमत होने का प्रस्ताव करता है, तो उस प्राधिकरण को जो दोषी अधिकारी के खिलाफ निर्णय ले रहा है, उसे सुनवाई का अवसर देना चाहिए, अन्यथा उसे बिना सुने ही दंडित किया जाएगा**। विभागीय कार्यवाही में, अंतिम महत्व का क्या है वह अनुशासनात्मक प्राधिकरण का निष्कर्ष है।

49. दूसरी स्थिति उस मामले की है जहाँ आरोप सिद्ध पाया गया है। ऐसी परिस्थितियों में, अनुशासनात्मक प्राधिकरण, जांच रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद, इसे स्वीकार करेगा और निष्कर्ष के संबंध में अवसर प्रदान करने के बाद, आचार नियमों के तहत आवश्यक दंडात्मक आदेश पारित करेगा।

50. यदि आचार नियम अपील या पुनरीक्षण का तंत्र प्रदान करता है, तो उसे दाखिल करना आवश्यक है। यदि अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश को अपील और पुनरीक्षण प्राधिकरण के समक्ष चुनौती दी गई है और दोनों उच्च मंच ने अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया है, तो वह आदेश अंतिमता को प्राप्त कर लेगा जब तक कि प्रशासनिक अनुशासनात्मक प्राधिकरणों के चरणों की बात है।

51. इसके अलावा, इसे विलय के सिद्धांत पर अंतिमता प्राप्त होगी क्योंकि यदि अपील प्राधिकरण द्वारा आदेश को पुष्टि की जाती है और उसके बाद यदि पुनरीक्षण प्राधिकरण इसे पुष्टि करता है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश को प्रारंभ में अपील प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश में पुष्टि किया गया माना जाएगा और पुनरीक्षण प्राधिकरण द्वारा इसकी पुष्टि के बाद, अपील प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश को पुनरीक्षण प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश के साथ विलीन माना जाएगा। अनुशासनात्मक प्राधिकरण या अपील प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश का कोई अस्तित्व नहीं होगा। इस संदर्भ में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **कुनहयाम्मद बनाम राज्य केरल** मामले **(2000) 6 एससीसी 359** में पारित निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है, विशेष रूप से पैराग्राफ 7, 8, 12 और 42 में, जो इस प्रकार है:

> 7.विलय का सिद्धांत न तो संविधानिक कानून का सिद्धांत है और न ही विधिक रूप से मान्यता प्राप्त सिद्धांत है। यह सामान्य कानून का सिद्धांत है जो न्याय वितरण प्रणाली की श्रेणी में उचितता के सिद्धांतों पर आधारित है। इस न्यायालय को विलय के सिद्धांत से संबंधित मामलों पर कई अवसर मिले हैं।

इसे ट्रेस करना और इस न्यायालय की न्यायिक राय को समय के साथ प्रस्तुत करना उचित होगा।

8.सीआईटी बनाम अमृतलाल भोगिलाल और कंपनी में, इस न्यायालय ने कहा:

"इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि किसी ट्रिब्यूनल द्वारा पारित आदेश के खिलाफ अपील का प्रावधान है, तो अपील प्राधिकरण का निर्णय कानून में प्रभावी निर्णय होता है। यदि अपील प्राधिकरण ट्रिब्यूनल के निर्णय को संशोधित या पलटता है, तो यह स्पष्ट है कि प्रभावी निर्णय अपील का निर्णय होता है और इसे लागू किया जा सकता है। कानून में स्थिति यही होगी, भले ही अपील का निर्णय केवल ट्रिब्यूनल के निर्णय की पुष्टि करता हो। ट्रिब्यूनल के निर्णय की पुष्टि या पुष्टि के परिणामस्वरूप, मूल निर्णय अपील के निर्णय में विलीन हो जाता है और केवल अपील का निर्णय ही अस्तित्व में रहता है और प्रभावी होता है और इसे लागू किया जा सकता है।"

12. विलय के सिद्धांत के पीछे की तर्कशक्ति यह है कि किसी दिए गए समय पर एक ही विषय वस्तु को नियंत्रित करने वाले एक से अधिक निर्णय या प्रभावी आदेश नहीं हो सकते। जब किसी निम्न न्यायालय, ट्रिब्यूनल या प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश या निर्णय को उच्च न्यायालय के समक्ष उपलब्ध कानूनी उपाय के तहत चुनौती दी जाती है, तो हालांकि चुनौती का आदेश या निर्णय प्रभावी और बाध्यकारी बना रहता है, फिर भी इसकी अन्तिम स्थिति निर्धारित नहीं हो पाती है। एक बार जब उच्च न्यायालय ने उस विवाद का निपटारा कर दिया, चाहे अपील में प्रस्तुत आदेश या निर्णय को रद्द किया जाए, संशोधित किया जाए या केवल पुष्टि की जाए, तो यह उच्च न्यायालय, ट्रिब्यूनल या प्राधिकरण का आदेश या निर्णय होता है जो अंतिम, बाध्यकारी और प्रभावी होता है, जिसमें निम्न न्यायालय, ट्रिब्यूनल या प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश या निर्णय विलीन हो जाता है। हालांकि, यह सिद्धांत सार्वभौमिक या असीमित रूप से लागू नहीं होता। उच्च न्यायालय द्वारा

प्रयोग की गई अधिकारिता की प्रकृति और चुनौती का विषय-वस्तु जिसे रखा गया है या जिसे रखा जा सकता था, इसे ध्यान में रखना होगा।

42. "विलीन होना" का अर्थ है किसी अन्य चीज़ में डूबना या गायब होना; अवशोषित होना या समाप्त होना; मिलना या निगल लिया जाना। कानून में विलय को एक छोटी चीज़ के बड़े द्वारा अवशोषित होने के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसके द्वारा छोटी चीज़ अस्तित्व में रहना बंद कर देती है, लेकिन

बड़ी चीज़ नहीं बढ़ती; यह एक ऐसा अवशोषण या निगलना है जो पहचान और व्यक्तित्व की हानि को शामिल करता है।

52. **कुनहयाम्मद बनाम राज्य केरल (2000) 6 एससीसी 359** में निर्णय के बाद, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **चंडी प्रसाद बनाम जगदीश प्रसाद** मामले में तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा निर्णय दिया, जो **(2004) 8 एससीसी 724** में रिपोर्ट किया गया है। इसमें पैराग्राफ 23 और 24 में कहा गया है, जो इस प्रकार है:

> "23. विलय का सिद्धांत न्याय वितरण प्रणाली की श्रेणी में उचितता के सिद्धांतों पर आधारित है। विलय का सिद्धांत अपील प्राधिकरण द्वारा पारित पलटाव, संशोधन या पुष्टि के आदेश के बीच कोई भेद नहीं करता। यह सिद्धांत यह मानता है कि किसी दिए गए समय पर एक ही विषय वस्तु को नियंत्रित करने वाले एक से अधिक प्रभावी निर्णय नहीं हो सकते। 24. यह स्पष्ट है कि जब अपील न्यायालय एक निर्णय पारित करता है, तो निचली अदालत का निर्णय अपील न्यायालय के निर्णय में विलीन हो जाता है और यदि अपील निर्णय में कोई संशोधन किया जाता है, तब भी अपील न्यायालय का निर्णय निचली अदालत के निर्णय को अधिलेखित कर देता है। दूसरे शब्दों में, एक निर्णय का विलय इस बात से स्वतंत्र होता है कि अपील न्यायालय निचली अदालत द्वारा पारित निर्णय की पुष्टि करता है, संशोधित करता है या पलटता है।"

53. अब सवाल यह है कि यदि पुनरीक्षण प्राधिकरण ने अपील प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश को पुष्टि किया है, तो इसका अर्थ निहित रूप से यह होगा कि अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा लगाए गए दंड का आदेश पुनरीक्षण प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश में विलीन हो जाएगा।

54. यदि पुनरीक्षण प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए चुनौती दी गई है और यदि उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण प्राधिकरण का आदेश रद्द कर दिया गया है, तो इसका अर्थ यह होगा कि पुनरीक्षण प्राधिकरण या अन्य प्राधिकरण, अर्थात्, मूल और अपील प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश भी अस्तित्व में नहीं रहेगा।

55. यह और भी आवश्यक है कि यहाँ उल्लेख किया जाए कि जिस क्षण किसी लोक सेवक के खिलाफ आरोप पत्र जारी किया गया है और यह सिद्ध जांच रिपोर्ट के निष्कर्ष को स्वीकार करने पर दंड के आदेश में परिणत होता है, और यदि बाद में उक्त आदेश को अपील या पुनरीक्षण प्राधिकरण या न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए रद्द किया जाता है, तो आरोप पत्र स्वयं अस्तित्व में नहीं रहेगा।

56. राज्य के लिए अधिवक्ता द्वारा जो भेद करने का प्रयास किया गया है, वह यह है कि एक अलग मानक का पालन किया जाना चाहिए जब कर्मचारी को अनुशासनात्मक प्राधिकरण

द्वारा बरी किया गया हो और यदि दंड को उच्च न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया हो, तो संबंधित कर्मचारी को समान व्यवहार नहीं दिया जा सकता।

57. लेकिन इस न्यायालय इस तर्क से प्रभावित नहीं है, कारण यह है कि ऊपर चर्चा के अनुसार, जिस क्षण उच्च न्यायालय ने न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए दंड के आदेश में हस्तक्षेप किया है, तब दंड का आदेश केवल अस्तित्व में नहीं रहेगा, बल्कि यह उस दिन तक जाएगा जब आरोप पत्र जारी किया गया था। इसलिए, आरोप पत्र का कोई अस्तित्व नहीं होगा जहाँ उच्च न्यायालय ने दंड के आदेश को रद्द कर दिया हो।

58. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **संघ बनाम के.वी. जंकीरमन** (उपर्युक्त) मामले में जो विचार किया है, उसका पूरा उद्देश्य केवल इसलिए दोषी कर्मचारी को दंडित करना नहीं है क्योंकि विभागीय कार्यवाही पदोन्नति के विचार की नियत तिथि पर लंबित थी और बरी होने की स्थिति में पदोन्नति उसी नियत तिथि से दी जानी चाहिए, अर्थात्, जिस दिन संबंधित दोषी कर्मचारी को पदोन्नति के लिए योग्य पाया गया था।

59. "बरी करना" शब्द को व्यापक अर्थ में लिया जाना चाहिए, जिसका अर्थ है कि संबंधित लोक सेवक सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए दोषी नहीं पाया गया है, जो या तो अनुशासनात्मक प्राधिकरण, अपील प्राधिकरण या पुनरीक्षण प्राधिकरण द्वारा हो सकता है।

60. जहाँ तक उच्च न्यायालय की शक्ति का सवाल है, जब उच्च न्यायालय को अनुशासनात्मक प्राधिकरण के प्रशासनिक निर्णय में हस्तक्षेप करने की शक्ति दी गई है, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत प्रदान की गई है, तो यह राज्य के लिए उपलब्ध नहीं है, जिसके पास उच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा की शक्ति के तहत लिए गए निर्णय के संबंध में एक अलग मानक है। अन्यथा, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय की शक्ति प्रश्न में होगी।

61. राज्य का यह मामला नहीं है कि उच्च न्यायालय ने 28.12.2015 के आदेश को रद्द करते समय **अपनी न्यायायिक अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण किया है**, जिसे भी नहीं लिया जा सकता क्योंकि बार में सूचित किया गया है कि उक्त आदेश को उच्च मंच पर चुनौती नहीं दी गई है।

62. इसके अलावा, याचिकाकर्ता द्वारा समानता का आधार प्रस्तुत गया है। यह कहा गया है कि एक समान व्यक्ति जिसके खिलाफ विभागीय कार्यवाही चल रही थी, जब विभागीय पदोन्नति समिति की बैठक हुई थी, अर्थात् लक्ष्मी नारायण, जिसे उसकी बरी होने की तिथि से पदोन्नति दी गई है।

63. उपरोक्त तथ्य को राज्य ने विवादित नहीं किया है।

64. अब सवाल यह रह जाता है कि यदि अनुशासनात्मक प्राधिकरण या अपील प्राधिकरण या पुनरीक्षण प्राधिकरण द्वारा बरी करने का आदेश पारित किया गया है, तो बरी करने के दो

अलग-अलग मानक नहीं हो सकते। यदि अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश में से किसी भी चरण को उच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए रद्द कर दिया है, तो एक अलग मानक होगा।

65. इस न्यायालय का उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर यह मानना है कि नियत तिथि से पदोन्नति न देना, अर्थात् 25.09.2018, कुछ और नहीं **बल्कि अनुचित है और** यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **भारत संघ बनाम के.वी. जानकीरमन** मामले में स्थापित सिद्धांत के उद्देश्य के खिलाफ है।

66. इस न्यायालय का विचार है कि यह याचिका स्वीकार की जानी चाहिए।

67. इस प्रकार, वर्तमान याचिका स्वीकार की जाती है।

68. **विरोधी पक्ष** को निर्देश दिया जाता है कि वे विभागीय पदोन्नति समिति की सिफारिश के आधार पर नई अधिसूचना जारी करें, जहाँ याचिकाकर्ता को 25.09.2018 से पदोन्नति के लिए योग्य पाया गया है।

69. इसके परिणामस्वरूप, 25.09.2018 से लेकर सेवानिवृत्ति की तिथि तक के वेतन के अंतर की बकाया राशि को इस आदेश की प्रति प्राप्त करने की तिथि से तीन महीने के भीतर जारी करने का निर्देश दिया जाता है।

(न्यायमूर्ति सुजीत नारायण प्रसाद)

यह अनुवाद संजय नारायण, पैनल अनुवादक द्वारा किया गया है|